**ओ३म्**

**‘ईश्वर सर्वतोमहान और वेदानुयायी ऋषि महान और संसार के आदर्श’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 इस संसार और पूरे ब्रह्माण्ड में सबसे महान कौन है? इसका उत्तर है कि इस संसार को बनाने व चलाने वाला जगदीश्वर सबसे अधिक महान पुरुष है। ईश्वर के बाद संसार में सबसे महान पुरूष व मनुष्यों के आदर्श कौन हैं, इसका उत्तर है वेदों के अनुयायी व अनुमागी सभी ऋषि महान और समस्त मानवता के आदर्श हैं। हर बात को प्रमाणों से पुष्ट करना होता है तभी वह सर्वस्वीकार्य होती है। अतः पहले ईश्वर की महानता की कुछ चर्चा करते हैं। ईश्वर का विषय आने पर पहला प्रश्न तो उसकी सत्ता को सिद्ध करना होता है। यदि ईश्वर है तो इसका प्रमाण क्या है? हमारा उत्तर है कि हम आंखों से इस संसार को देखते हैं। यह समस्त संसार वा ब्रह्माण्ड किसी मनुष्य व मनुष्य समूह द्वारा की गई रचना नहीं है। आज संसार में 7 अरब से अधिक मनुष्य हैं।यदि यह सब मिलकर भी एक पृथिवी, चन्द्र व सूर्य की रचना करने लगें तो यह असम्भव है। मनुष्यों द्वारा असम्भव यह कार्य हमारी आंखों से प्रत्यक्ष हो रहा है जिसमें किसी को भी सन्देह नहीं है। अतः इसका रचयिता ही ईश्वर है। इससे ईश्वर का अस्तित्व सत्य सिद्ध हो जाता है। ईश्वर ने ब्रह्माण्ड में एक सूर्य, चन्द्र व पृथिवी ही नहीं बनाये अपितु अनन्त सूर्य, चन्द्र, ग्रह, उपग्रह व पृथिव्यां बनाई हैं जिनका अस्तित्व व अपौरूषेय सत्ता से इनकी उत्पत्ति बुद्धि, तर्क, युक्ति व इनके प्रत्यक्ष दर्शन आदि से सिद्ध होता है।

 ईश्वर की महानता को समझने के लिए वेदों में वर्णित ईश्वर के कुछ गुणों का विचार करना भी उपयुक्त होगा। कोई भी उपयोगी रचना बिना ज्ञान व सामथ्र्य के नहीं होती। ज्ञान चेतन द्रव्य में ही रहता है। जीवात्मा चेतन तत्व, पदार्थ वा द्रव्य है। जीवात्मा में ज्ञान का होना प्रत्यक्ष सिद्ध है। जीवात्मा की ही भांति सृष्टिकर्ता ईश्वर का भी चेतन पदार्थ होना सिद्ध हो जाता है क्योंकि सृष्टि कर्तृत्व ईश्वर में ज्ञान व सामथ्र्य की पराकाष्ठा सिद्ध करते हैं। दूसरे गुण सुख व आनन्द पर विचार करते हैं। जीवात्मा कभी अनुकूलता होने पर सुखी और प्रतिकूलता होने पर दुःखी होता है। प्रतिकूलता मुख्यतः शारीरिक रोग व किसी अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति न होने पर प्रायः होती है। इसका एक प्रमुख कारण जीवात्मा का एकदेशी, ससीम, सूक्ष्म व अल्प सामथ्र्य वाला होना होता है। ईश्वर की अनन्त सृष्टि को देखकर उसके अनन्त स्वरूप का ज्ञान होता है। इसका अभिप्राय है कि ईश्वर सर्वव्यापक है। सर्वव्यापक ही अनन्त हो सकता है और ऐसी सत्ता से ही अनन्त सृष्टि की रचना होना संभव होता है। अल्प ज्ञान व अज्ञान से कोई आदर्श, निर्दोष, त्रुटिरहित व पूर्ण प्रशंसनीय रचना नहीं हो सकती। अतः ईश्वर में ज्ञान की पराकाष्ठा है, न्यूनता किंचित नहीं है जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण ईश्वर की बनाई व संचालित यह सृष्टि है। इन सामर्थ्यों से युक्त ईश्वरीय सत्ता के लिए **‘सर्वज्ञ’** शब्द का प्रयोग किया जाता है जो कि उचित ही है। ईश्वर सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान है, इसी कारण उसकी इस सम्पूर्ण सृष्टि और मनुष्य आदि सभी प्राणियों के शरीरों में ज्ञान विज्ञान की दृष्टि से पूर्णता, निर्दोषता सहित आदर्श रचना के गुण पाये जाते हैं। विज्ञान का एक नियम है कि संसार में जो मूल पदार्थ हैं वह अनादि व अनुत्पन्न हैं। अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती अपितु भाव से ही भाव की उत्पत्ति होती है। अतः सृष्टि के लिए ईश्वर, जड़ प्रकृति व इसके उपभोक्ता के नित्य, कारण व मूल अस्तित्व का होना आवश्यक है। इन मूल पदार्थों का विकार ही यह सृष्टि है। इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर भी अनादि, अजन्मा, अनुत्पन्न व अविनाशी सिद्ध होता है। वह सदा से है और सदा रहेगा। उसका अभाव कभी नहीं होगा। अब चंूकि उसका अस्तित्व अक्षुण है, अतः यह सृष्टि बनती व बिगडत़ी अर्थात् इसकी समय समय पर ईश्वरीय सिद्धान्तों के अनुसार रचना और प्रलय और प्रलय के बाद पुनः रचना होती रहेगी। अब यदि अनन्त गुण वाले ईश्वर के मुख्य गुणों को एक माला में पिरोकर कहना हो तो इसे महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के शब्दों में इस प्रकार से कह सकते हैं **‘ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है।’** इन सभी गुणों के कारण ही वह एकमात्र संसार के सभी लोगों का उपासनीय है। ईश्वर के यह सभी गुण व विशेषण सृष्टि में प्रत्यक्ष घट रहे हैं। अतः ईश्वर का यही सच्चा व स्वीकार्य स्वरूप है। वैज्ञानिक भी इसकी अवहेलना नहीं कर सकते। उन्हें भी तर्क, युक्ति व बुद्धि संगत होने से इस स्वरूप को स्वीकार करना होगा।

 ईश्वर के जिन गुणों की चर्चा हमने उपर्युक्त पंक्तियों में की है वह यथार्थ व सत्य हैं। इसके अतिरिक्त ईश्वर मनुष्य आदि सभी प्राणियों की जीवात्माओं को पूर्व जन्म-जन्मान्तर के कर्मों के अनुसार उन्हें मनुष्य व इतर प्राणियों की योनियों में जन्म देकर सुख व दुःख प्रदान करता है। हम वर्तमान जीवन में मनुष्य योनि में हैं। यह मनुष्य जीवन हमें ईश्वर की व्यवस्था द्वारा ही प्राप्त हुआ है। माता-पिता व समाज के अन्य संबंधी आदि इसमें सहायक बने हैं जिनकी व्यवस्था भी ईश्वरीय व्यवस्था से हुई है। हम चेतन, अल्पज्ञ, एकदेशी, ससीम, अनादि, नित्य, अनुत्पन्न, अविनाशी, पूर्वजन्म-परजन्म के चक्र में आबद्ध, वेदज्ञान प्राप्ति व परोपकार आदि उत्तम कर्मों को करके मनुष्य आदि योनियों को प्राप्त करते हैं तथा वेदमार्ग का आचरण व पालन कर समाधि द्वारा ईश्वर साक्षात्कार कर सकते हैं। हमने जीवन में अनेक उतार चढ़ाव देखें हैं और कुल मिलाकर हमारा जीवन सुखों से ही युक्त रहा है। हमें जो दुःख मिलते हैं वह हमारे इस जन्म वा पूर्वजन्म में किए गये अविद्यायुक्त कर्म ही होते हैं। संसार के सभी मनुष्यों व प्राणियों को सुख-दुःख की व्यवस्था करने से ईश्वर की समानता किसी जीव से नहीं हो सकती। सभी उसके कृतज्ञ हैं। यह सभी सुख हमें ईश्वर की अहैतुकी कृपा से दानरूप में प्राप्त हुए हैं। अतः बिना किसी निजी प्रयोजन के सभी जीवात्माओं वा प्राणियों को नाना प्रकार के सुखों से युक्त करने के कारण ईश्वर संसार में सबसे महान व महानतम् है। यइ अकाट्य व सर्वमान्य है तथा अनुमानों व अनुभवों से सिद्ध तथ्य है।

 ईश्वर के बाद संसार में सबसे अधिक महान किसे मान सकते हैं? महान वह मनुष्य होता है जो संसार का ईश्वर के बाद सबसे अधिक उपकार करता है। सभी माता-पिता व आचार्य अपनी सन्तानों व शिष्यों पर उपकार करते हैं। अतः सभी संतानों के लिए अपने माता-पिता व आचार्य महान हैं। माता-पिता व आचार्य तो अपनी ही सन्तानों व शिष्यों का उपकार व कल्याण करते हैं परन्तु जो सभी मनुष्यों को अपनी सन्तान मानकर उनका सर्वाधिक कल्याण करें वह अधिक महान् होते हैं। ईश्वर ने जब सृष्टि उत्पन्न की तो अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न स्त्री व पुरुषों के माता-पिता व आचार्य नहीं थे। ईश्वर ने ही माता-पिता सहित आचार्य की भी भूमिका निभाई थी। ईश्वर ने ही आदि मनुष्यों को जन्म दिया था तथा ज्ञान भी ईश्वर से ही मिला था। उसी ज्ञान का नाम ही **‘‘वेद”** है। यह बता दें कि चार वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञान चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य व अंगिरा को सर्वान्तर्यामी ईश्वर के द्वारा उन ऋषियों की आत्माओं में स्थापित किया गया था। इन ऋषियों ने ब्रह्माजी को चारों वेदों का ज्ञान दिया। यह आदि पांच ऋषि ही सृष्टि के आरम्भ में चारों वेदों के ज्ञान से सम्पन्न हुए। ईश्वर से वेदज्ञान की प्राप्ति के बाद इन्होंने वेद ज्ञान को अन्य स्त्री व पुरुषों को एक आचार्य की भांति पढ़ाया जिससे ज्ञान प्राप्ति वा अध्ययन अध्यापन की परम्परा का आरम्भ हुआ। सृष्टि की आदि में आरम्भ यह परम्परा आज तक चली आ रही है। यत्र तत्र इसमें देश, काल व परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन अवश्य हुए हैं। इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त होने से ही संसार में ज्ञान व विज्ञान का विकास व उन्नति हुई है जिसका श्रेय सृष्टि के आरम्भ काल के आचार्यों को है। उन्ही आचार्यों से यह ज्ञान संस्कृत में अध्यापन द्वारा आगे बढ़ता व फैलता रहा और समय व भौगोलिक कारणों से संस्कृत से इतर उच्चारण की अशुद्धियों के कारण अनेक भाषाओं का उदय व प्रचलन भी हुआ है। आज हमें जो सुख के साधन मिले हैं वह इसी सृष्टि के पदार्थों से ज्ञान की उन्नति द्वारा प्राप्त हुए हैं। इसका श्रेय हमारे सृष्टि के प्राचीन आर्यों व वेद ज्ञान से सम्पन्न ऋषियों को सर्वाधिक है। इसका कारण यह है कि हमारे ऋषि प्रायः विवाह न कर ब्रह्मचर्य से युक्त जीवन व्यतीत करते थे। जो गृहस्थी होते थे वह भी वेद के ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन करते थे। ऋषियों का मुख्य कार्य ईश्वरोपासना, यज्ञ द्वारा विश्व का कल्याण, अध्यापन, वेद ज्ञान का प्रचार व शासन के संचालन में राजाओं को मार्गदर्शन करना आदि होता था। अपनी आवश्यकतायें अल्प व नाम मात्र रखते हुए ब्रह्मचर्य का पालन, ईश्वरोपासना, ईश्वर का साक्षात्कार और देश व समाज को अध्यात्म सहित भौतिक विद्याओं, गणित, ज्योतिष आदि का उपदेश व ज्ञानार्जन कराने से यह ऋषि व आचार्य ही श्रेष्ठ मानव सिद्ध होते हैं। अपने इन गुणों के कारण ही यह संसार के पूजनीय थे। कोई भी संसारी जीव जो गृहस्थी हो और वेदज्ञान से वंचित हो, वह संसार का उन ऋषियों के समान कल्याण कदापि नहीं कर सकता। अतः प्राचीन काल से अब तक जो ज्ञान से सम्पन्न और ईश्वर का साक्षात्कार किये हुए योगी ऋषि हुए हैं वही संसार में सबसे महान थे। उनकी महानता में अन्य संसारिक मनुष्य ज्ञान विज्ञान से युक्त होते हुए भी उनकी तुलना में उनसे पीछे हैं।

 इन ऋषियों की परम्परा में ही उन्नीसवीं शताब्दी में महर्षि दयानन्द (1825-1883) भी सम्मिलित हैं जो अपने गुणों, सिद्धियों, ज्ञान, चारित्रिक विशेषताओं एवं सर्वजनहितकारी कार्यों के कारण महान पुरुषों में सम्मिलित हैं। महाभारत काल के बाद हमें महर्षि दयानन्द के समान अन्य कोई महान पुरुष दृष्टिगोचर नहीं होता। इनसे पूर्व महर्षि मनु, पाणिनी, यास्क, वेद व्यास, बाल्मीकि, पंतजलि, गौतम, कपिल, कणाद, याज्ञवल्क्य आदि हुए हैं। यह व ऐसे अनेक ऋषि जिनका इतिहास विलुप्त हो गया, संसार के महानतम पुरुष थे। अन्य सभी का स्थान इनके बाद आता है। राजनैतिक व अन्य कारणों से कोई किसी भी मनुष्य को महान् पुरुष मान सकता है परन्तु महानता की कसौटी मनुष्य का ज्ञान व कार्य होते हैं। यदि महान आत्माओं व पुरुषों का विस्तार करें तो इसमें हमारे सभी शहीद स्वतन्त्रता सेनानी और शहीद सैनिक भी आते हैं। जिन सेनानायकों के अन्तर्गत हमने पाकिस्तान व बंगलादेश के युद्ध जीते हैं वह भी महान थे।

ईश्वर व ऋषियों की महानता में और बहुत कुछ वर्णन किया जा सकता है। विस्तार भय से हम लेख को विराम दे रहें हैं। ईश्वर व महर्षि दयानन्द सहित हम सभी ऋषियों व अन्य सभी सच्चे महान पुरुषों को नमन करते हैं। ओ३म् शम्।

 **-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**

**ओ३म्**

**‘वैदिक वर्ण-व्यवस्था वर्तमान में खण्डित होते हुए भी अंशतः जीवित है’**

**-डॉ. जयदत्त उप्रेती, स्वस्त्ययन, तल्ला थपलिया, अल्मोड़ा-263601**

 पाक्षिक पत्र **‘‘आर्य जीवन”** के 18-11-2016 के अंक में प्रकाशित श्री मनमोहन कुमार आर्य जी का लेख वैदिक वर्ण-व्यवस्था की वर्तमान में व्यावहारिकता के प्रश्न पर छपा है, जिसमें उन्होंने आर्यसमाज के विद्वानों से इस विषय पर अपने विचार देने का अनुरोध किया है। इस सम्बन्ध में मुझे यह निवेदन करना है-

**डा. जयदत्त उप्रेती जी आर्यसमाजा के वरिष्ठ विद्वान, विचारक वा चिन्तक हैं। आपने फोन पर हमसे चर्चा की और यह लेख भेजा है। हम इसके प्रचार की दृष्टि से फेसबुक पर प्रस्तुत कर रहे हैं। हम आशा करते हैं कि पाठक इस विषय से परिचित होंगे ओर अपनी टिप्पणी दे सकते हैं जिनका उपयोग कर इस विषय को आगे विस्तृत किया जा सकता है।**

 **-मनमोहन कुमार आर्य**

वर्ण-व्यवस्था, क्योंकि वेदानुसार एक सभ्य सुसंगठित समाज के लिए एक आवश्यक और अपरिहार्य विधान है, जिसका अन्य सामाजिक कर्तव्यों की भांति पालन करना लोकहित में है। क्योंकि मनुष्यों की सारी आवश्यकतायें आपस में एक-दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं, अकेले कोई भी सब कुछ कार्य नहीं कर सकता, अल्पज्ञ, अल्पशक्तिक और अल्पसाधन होने से, विशेषतः रुग्णातादि की स्थिति में। इसलिए सबको मानना पड़ता है कि मनुष्य सदैव एक दूसरे पर निर्भर रहा करता है। उसके बिना उसका योगक्षेम अथवा गुजारा होना भी कठिन होता है।

 जब हम आज के इस वैज्ञानिक चकाचौंध वाले समय में भी देखते हैं कि ब्राह्मणत्व का कार्य वे सब लोग कर रहे हैं जो निरन्तर अध्ययन-अध्यापन, शोध, अनुसंधान और नित नयी नयी वस्तुओं की खोजबीन अथवा जानकारी में लगे हुए हैं। वे लोग भी जो यज्ञ = अच्छे अच्छे लोकहित के पुण्य कार्य मनसा, वाचा, कर्मणा कर रहे हैं, और करवा रहे हैं, तथा वे लोग भी जो यथाशक्ति अपने पुरुषार्थ और परिश्रम से अर्जित धन-सम्पत्ति (जिसके अनेक रूप हैं) का सुपात्रों में नित दान किया करते हैं, ब्राह्मणत्व के कर्तव्य कर्मों को ही कर रहे हैं क्योंकि मनुस्मृति में ब्राह्मण के ये छः ही मुख्य कर्म बतलाये गये हैं। यथा,

**अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्।। (मनु0, 1-86)**

भगवद् गीता में भी कुछ आचरण की शुद्धतादि विशेषतायें और जोड़ते हुए यही कहा गया है-

**शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वाभावजम्।। (गीता 8-42)**

 इसी प्रकार जो लोग मुख्यतः प्रशासन में, राजधर्म या राजकर्म में, सेना में, पुलिस विभाग में, न्यायाधीशत्वादि कर्म में और किसी भी प्रकार की देश, धर्म, जाति की सुरक्षा-संरक्षा के कार्य में लगे हुए हैं, वे सब क्षात्रधर्म में लगे होने के कारण क्षत्रिय वर्ण में ही गिने जा सकते हैं। जैसा कि कहा गया है-

**प्रजाना रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः।। (मनु. 1-89)**

**शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्। दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।। (गीता 18-43)**

तदनुसार वर्तमान में हमारे आदरणीय प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी, चाहे जिस कुल में जन्म लिए हों, राजधर्म का पालन करने के कारण क्षत्रिय वर्ण को ही सार्थक को कर रहे हैं।

 एवमेव कृषि, वाणिज्यादि कर्म को मुख्यतः करने वाले जो कोई भी जन हों, चाहे वे जिस किसी कुल में पैदा हुए हों, वैश्यवर्ण के कर्म कर रहे हैं। इन तीनों प्रकार के वर्णों वाले लोगों की सेवा-सहायता के कर्म में मुख्यतः जो लगे रहते हैं, वे शूद्र वर्ण का कार्य सम्पन्न कर रहे हैं। इस प्रसंग में, एक छोटी सी किन्तु सटीक बात की एक घटना मुझे सन् 1964 की स्मरण आ रही है, जिसका उल्लेख करना मैं यहां उचित समझ रहा हूं, जो इस प्रकार है। मैं तब सचिवालय, उत्तर प्रदेश में अवरवर्ग सहायक पद पर कार्यरत था, किन्तु पठन-पाठन के कार्य में मेरी अधिक रुचि थी। अकस्मात् मुझे लखनऊ में काशी पण्डित सभा के अध्यक्ष पं. गोपाल शास्त्री, दर्शन केसरी जी मिल गये। मैंने उनसे बातों बात में अपना परिचय दिया तो कहने लगे आप जोशीमठ चलिए, मैं वहां पर बदरीनाथ वेद-वेदांग महाविद्यालय में प्रधानाचार्य हूं, वहां व्याकरणाचार्य का पद रिक्त है, आप छात्रों को व्याकरणादि विषयों को पढ़ायेंगे। यह सुन मैं प्रसन्न भी हुआ किन्तु चिन्ता इस बात की होने लगी कि स्थायी सरकारी नौकरी छोड़कर अस्थायी और न्यून वेतन वाले कार्य को क्या ग्रहण करना उचित होगा? उसके बाद तो गोपाल शास्त्री जी के मेरे पास पत्र आने लगे, जिनमें लिखा रहता था **‘‘त्यजेमां शूद्रवृत्तिं, कुरु ब्राह्मणकर्म, अध्यापनं ब्राह्मण कर्म”** अर्थात् इस शूद्र कार्य को छोड़कर ब्राह्मण का कर्म अध्यापन कीजिए। प्रसंगोपात्त इस कथन से व्यंग्यार्थ निकला कि अध्यापन और क्लेरिकल कार्य में तुलनात्मक दृष्टि से अध्यापन कार्य अर्थात् विद्यादान का कार्य श्रेयस्कर है। शूद्र शब्द को आज कुछ लोग तुच्छ और निन्दित अर्थ वाला समझते हैं किन्तु यह उनकी भूल है। सेवा और सहायता का कार्य कोई भी हो तुच्छ नहीं हो सकता। उसे तुच्छ तभी कहना चाहिए जब कि वह किसी की हानि करने वाला हो, अन्यथा नहीं। अस्तु, इन अन्तिम दो वर्णों के सम्बन्ध में मनुक्त और गीतोक्त विधानों में समानता है, जो इस प्रकार है--

**पशूनां रक्षणं दानभिज्याध्ययनमेव च। वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च।।**

**एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्। एतेषामेव वर्णानां शुश्रषामनसूयया।। (मनु. 1-90, 91)**

**कृषिगौरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्। परिचयात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।। (गीता. 18-44)**

 वर्तमान काल में भी संसार भर के किसी भी धर्म को मानने वाले या न मानने वाले लोग भी जो कि पूर्वोक्त कर्मों में विशेष रूप से लगे हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नामक वर्णों के कार्य सर्वांश में न सही, आंशिक रूप से तो कर ही रहे हैं, भले ही उन्होंने अपने नाम अपने देश की भाषा में कुछ भी रक्खा हुआ हो। अंग्रेजी की शब्दावली में टीचर, प्रीचर, रिसर्चर, इन्टलैक्चुअल क्लास ही ब्राह्मण वर्ण है, रुलर, फाइटर, सिक्यूरिटी फोर्सेज, पोलिटीशियंस, जजेज्, ये सब क्षत्रिय वर्ण का प्रकारान्तर से कार्य कर रहे हैं। एग्रीकल्चरिष्ट, कल्टीवेटर्स, ट्रेडर्स आदि कहे जाने वाले वैश्य वर्ण का ही कार्य कर रहे हैं और सर्वेन्ट्स क्लास, लेबरर्स आदि नाम से कहे जाने वाले लोग शूद्र वर्ण के कार्य को सम्पन्न कर रहे हैं। इसी दृष्टि से हमारा मत है कि वैदिक वर्ण-व्यवस्था संसार में आंशिक रूप से चल रही है।

 जहां तक हिन्दू समाज का प्रश्न है, वहां यद्यपि चारों वर्णों का वैदिक नाम यथावत् प्रचलित है अन्तिम वर्ण के लिए आज भले ही राजनीतिक दृष्टि से नाम परिवर्तन कर दिया गया है। बस, जो दोष या गड़बड़ है, वह जन्मना वर्ण मानने और गुण-कर्म के अनुसार वर्ण के न मानने के कारण है। केवल तथाकथित ब्राह्मण कुल में जन्म लेने वाले कुछ गिने-चुने लोगों में पूर्वोक्त रूप में अध्यापनादि, पौरोहित्यादि कर्म के साथ-साथ आचरण की शुद्धता देखने को मिलेगी, जो कदाचित् दस-पांच प्रतिशत भी हो या न हो। शेष तो सब लोग जन्मना वर्ण या जाति के अभिमानी होते हुए भी भिन्न भिन्न वर्ण के कार्यों में ही मुख्यतः लगे रहते हैं, स्वेच्छा से अथवा परिस्थितिवशात्। समुचित रूप से तो चारों वर्णों के प्रधान-प्रधान कार्य अपने देश भारत में भी यथाकथंचित् हो ही रहे हैं, क्योंकि स्वस्थ समाज के लिए उन सबकी सदा सर्वत्र आवश्यकता बनी रहती है।

 अब रहा प्रश्न आर्यसमाज में वर्ण-व्यवस्था का। आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द ने वेदों के पुरुषसूक्त और मन्वादि स्मृतियों के आधार पर ब्राह्मणादि चारों वर्णों को गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार होने का सिद्धान्त स्वीकार किया है। परन्तु आर्यसमाज में भी यह सिद्धान्त शब्द रूप में ही मान्य रहा, व्यवहार में स्पष्ट नहीं हुआ। यदि कहा जाय कि इस विषय में बृहत् हिन्दू समाज की जो स्थिति है, वही थोड़े से परिवर्तन के साथ लगभग आर्यसमाज की भी स्थिति है, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। जैसा कि श्री मनमोहन जी ने सन्दर्भित लेख में कहा है, गुरुकुलों के द्वारा वर्णों का निर्धारण किया जाना चाहिए था, यही मैं भी सोचता रहा हूं। इसका प्रमाण परोपकारिणी सभा के द्वारा प्रतिवर्ष अजमेर में आयोजित की जाने वाली गोष्ठियों में लगभग 5-6 वर्ष पूर्व एक गोष्ठी में अपने द्वारा पढ़े गये शोधपत्र में और बाद में मौखिक संवाद में भी गोष्ठी के अध्यक्ष डा. सुरेन्द्र कुमार जी के समक्ष यही बात कही। परन्तु न वह शोध गोष्ठी के लेख कभी छपे और न उसका कोई उत्तर ही मुझे मिला। आज भी इस विषय पर कहीं कोई चर्चा नहीं सुनाई देती जिससे लगता है कि आर्यसमाज के सामान्य और प्रबुद्ध लोगों में इस विषय पर विचार करने में कोई रुचि नहीं है। प्रत्युत जैसा चल रहा है, उसी को चलने दिया जाय। अथवा, वैदिक कालिक वर्ण-व्यवस्था वर्तमान समय में वेदोक्त या सत्यार्थप्रकाशोक्त राजशासन न होने से लागू करना सम्भव नहीं है, इसलिए अपने लिए स्वतन्त्र रुप से यथेच्छ अच्छा कार्य चुनें, यही ठीक है। इति।

**-डॉ. जयदत्त उप्रेती**

 **स्वस्त्ययन**

 **तल्ला थपलिया**

 **अल्मोड़ा-263601**